International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 12 Issue 1, Jan.-Feb., 2024, Impact Factor: 8.376

अम्बेडकरवादी विचारधारा : प्रमुख दलित आंदोलन

डॉ0 कृष्ण कुमार

असि0 प्रोफेसर–हिन्दी, केशव प्रसाद मिश्र राजकीय महिला महाविद्यालय, औराई, भदोही।

कार्ल मार्क्स ने कहा था कि ‘‘वर्ग संघर्ष का इतिहास ही मानव समाज का इतिहास है।’’ यहाँ सम्पूर्ण समाज दो वर्गों में विभक्त है, शोषक वर्ग और शोषित वर्ग। दोनों ही वर्गों का एक दूसरे के प्रतिपक्ष में खड़े होने के कारण इनमें वर्ग संघर्ष जारी है। इसलिए कार्ल मार्क्स के अनुसार वर्ग संघर्ष मात्र एक सामाजिक विकास को प्रेरित करने वाली शक्ति है। किन्तु **डॉ. अम्बेडकर** ने यह प्रमाणित कर दिया कि ‘‘भारतीय समाज विभाजन के पीछे सबसे बड़ा कारण वर्ग संघर्ष नहीं वर्ण संघर्ष रहा है। जिसका सबसे प्रबल कारण भारतीय समाज व्यवस्था में भेदभाव है, क्योंकि वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित इस समाज में भेद–भाव का डंका जोरों पर है। सम्पूर्ण समाज विपरीत स्थितियों से घिरा हुआ है। प्राचीन समय से ही विषमतावादी विचारधारा इतनी प्रबल और रूढ़ हो चुकी है कि टूटने का नाम नहीं लेती। उक्त विचारधारा के विरूद्ध भारत के बाहर मार्टिन लूथर, अब्राहम लिंकन, ब्लैक साहित्य, अश्वेत साहित्य तथा भारत के दलित साहित्य में कबीर, रैदास, तुकाराम धन्ना, पीपा, सेन, नाई, राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, केशवचंद्र सेन, स्वामी विवेकानन्द तथा आगे चलकर गाँधी, फुले, पेरियार तथा अम्बेडकर आदि के संघर्ष की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही हैं। भारतीय समाज व्यवस्था के पुरातन रूढ़ियों को तोड़कर समाज में समरसता लाने के लिए महाड़ आंदोलन, कालाराम मंदिर प्रवेश, बंगाल में शूद्र आंदोलन, उत्तर भारत में आदि हिन्दू आंदोलन, तमिलनाडू में आदि द्रविड़ आंदोलन, आन्ध्र प्रदेश का आदि आंध्र आदि आंदोलन एक लम्बे इतिहास की देन है। यह वर्ण संघर्ष अलग–अलग कालखण्डों में यह अलग–अलग दिखाई पड़ता है। भक्तिकालीन कवियों में इसका स्वरूप अलग था। मध्यकाल और आधुनिक काल तक इसका स्वरूप परिवर्तित होता चला आया है। किन्तु चेतना का बीज भक्तिकाल से ही विद्यमान है। कालान्तर में ज्योतिबा फुले के संघर्ष से इस चेतना को नया आयाम मिला, वहीं अम्बेडकर के जीवन संघर्ष से दलितों में नई चेतना का सूत्रपात होता है। यही चेतना दलितों की प्रेरणा बनकर साहित्य में दिखाई पड़ती है, जो अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, वैज्ञानिक दृष्टिकोणों से पाखण्डवाद, सामन्तवाद, ब्राह्मणवाद, पूँजीवाद तथा सम्प्रदायवाद का खुला विरोध कर मनुष्य को समतावाद की धरातल पर स्थापित करता है।

भारतवर्ष में इस आंदोलन के प्रेरणास्रोत सर्वांग क्रांति के प्रवर्तक फुले, नवयुग के पैगम्बर पेरियार, भारतीय आत्मा के रक्षक अम्बेडकर का नाम अग्रणीय है। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर न सिर्फ एक लेखक, प्रखर वक्ता, शिक्षाशास्त्री, संविधानविद थे, बल्कि वे एक कुशल राजनीतिज्ञ भी थे जिन्होंने आधुनिक भारत में दलित आंदोलन की सामाजिक व राजनीतिक पृष्ठभूमि तैयार कर वर्षो से पूर्ण पशुतुल्य जीवन यापन कर रहे दलित समाज में न सिर्फ चेतना जगाया, बल्कि दलितों और शोषितों को संगठित कर इस अमानवीय समाज व्यवस्था के विरुद्ध सन् 1920 में ‘मूक नायक’ पत्रिका के माध्यम से आंदोलन का संचार किया। 1927 में सार्वजनिक स्थलों जैसे मंदिरों, तालाबों आदि स्थानों पर दलित प्रतिबंध को समाप्त करने के लिए बड़ी संख्या में दलितों के साथ चोबदार झील का पानी पीकर लम्बे समय से लगे प्रतिबंध को तोड़ दिया। मठाधीशों के अनुसार इस झील पर दलितों का पानी पीना वर्जित था, जबकि पशु–पक्षियों के लिए कोई रोक नहीं था। इस संबंध में डॉ. भीमराव अम्बेडकर कहते हैं कि ‘‘हम इस सत्याग्रह को इसलिए नहीं कर रहे हैं कि इस तालाब में कुछ अलग गुण हैं, बल्कि इसलिए कर रहे हैं कि हमें नागरिक व मानव होने के कारण अपने स्वाभाविक अधिकार चाहिए..... आगे कहते हैं कि हम यहाँ पानी पीने नहीं आये हैं, बल्कि यह सिद्ध करने आये हैं कि दूसरों की तरह हम भी इंसान हैं।’’[1]

1929–30 में कालाराम मंदिर प्रवेश, 1936 में लेबरपार्टी की स्थापना, 1942 में नागपुर सम्मेलन, 1956 में धर्म परिवर्तन आंदोलन द्वारा दलित चेतना में एक क्रांतिकारी विस्फोट हुआ। 1972 में दलित पैंथर की स्थापना और अमेरिका में नीग्रो लोगों द्वारा स्थापित ब्लैक पैंथर के क्रांतिकारी प्रभाव से भारत में दलित साहित्य का उद्भव और विकास हुआ। यह एक परिवर्तनकामी आंदोलन होने के साथ–साथ मानवतावादी साहित्य का अभिन्न अंग भी है। यहाँ समकालीन दलित साहित्य के साथ–साथ स्त्रीवादी व प्रगतिवादी साहित्य का अभिन्न जुड़ाव देखने

को मिलता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि तीनों का मार्ग भले अलग हो किन्तु मंजिल एक ही है, किन्तु मुक्ति तभी सम्भव है जब दलित चेतनावान हो। चेतना से परिपूर्ण दलित मन में सर्वप्रथम यहीं प्रश्न उठता है कि मैं कौन हूँ, मेरी पहचान क्या है? क्यों कि दलित चेतना का सीधा सम्बन्ध मानव की उस अन्तर्दृष्टि से है जो सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, आर्थिक व शैक्षणिक स्तर पर झूठे आवरण के तिलस्म को तोड़ती है। ''भारत के विद्याधर वर्ग ने इस देश में भालू, बंदर, हाथी, घोड़ा, बकरा, बकरी, कुत्ता, जैसे पशुओं से लेकर तोता, मैना, तीतर, कबूतर तक को प्रशिक्षित करने की विधाओं का आविष्कार किया। किन्तु दलितों के लिए शिक्षा निषेध कर मनुष्य होने के बाद भी उनके साथ मनुष्येतर और कहीं–कहीं तो पशु–पक्षियों से निम्नकोटि का जीवन जीने के लिए विवश किया गया।[2] बाबा साहेब की प्रखर दृष्टि से दलित इन बंधनों से मुक्त हो पाएँ। उन्होंने शिक्षित बनों, आन्दोलन चलाओ और संगठित रहो का नारा देकर दलितों में नई उर्जा का संचार किया। धीरे–धीरे यह चेतना समस्त दलितों के हृदय में समाकर समाज को देखने की नई दृष्टि प्रदान की।

यह चेतना साहित्य के अन्तःउर्जा में नदी के तेज बहाव की तरह समाविष्ट है, किन्तु बगैर भारतीय समाज व्यवस्था को ठीक से समझे चेतना की तीव्रता का अहसास करना कठिन है। अम्बेडकरवादी आंदोलन ने हिन्दू व्यवस्था के विरुद्ध सीधी कार्यवाही के रूप में खुला विद्रोह किया, क्योंकि ''हजारों वर्षों से यहाँ इंसान को अछूत कहा गया है, उसे गाँव से बाहर रखा गया है, नदी के नीचे वाले हिस्से में उसने पानी पीया। स्कूल में उसके लिए अलग जगह है। इस अमानवीय व्यवस्था से मुक्ति के लिए विद्रोह करना जरूरी था। यह साहित्य के रूप में छिड़ा हुआ हमारा हथियार है। अपनी किताब को मैं खाली किताब नहीं, इस सड़ी गली व्यवस्था के विरोध में उठाया गया हथियार समझता हूँ।''[3] इसलिए हमें इस जातिगत भेद–भाव की दीवार को तोड़कर अम्बेडकरी मंच पर एकत्र होना होगा, तभी दलितों का कल्याण सम्भव है। अम्बेडकर दलितों को उनके अधिकारों के प्रति सचेत करने के साथ समाज में उन्हें सही स्थान दिलाने और स्वाभिमान जगाने का काम किया। उनका समाज अशिक्षित था जिसके कारण बाबा साहेब के आंदोलनों को कभी–कभी व्यवस्था की करारी हार सहनी पड़ी किन्तु फिर भी वे टूटे नहीं। वे 1929 में धर्म परिवर्तन का बीड़ा उठाया और कहा जिस प्रकार भारत के लिए स्वराज अनिवार्य है उसी प्रकार अछूतों के लिए धर्म परिवर्तन भी अनिवार्य है। लाख प्रयासों के बावजूद भी अम्बेडकर अपने निर्णय पर अडिग रहे।

14 अक्टूबर, 1956 को लाखों अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म स्वीकार कर हिन्दू–देवी देवताओं को नकार दिया तथा हिन्दू देवी देवताओं अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न खड़ा हो गया, सभी दलित हीन कार्य छोड़ दिए। परिणामतः सवर्ण समाज में चारों ओर हाहाकार मच गया। अम्बेडकर और उनके अनुयायियों का मानना था कि ''हम बौद्ध हो गए हैं इसलिए हिन्दू धर्म द्वारा हम पर लादे गए हीन कार्य अब नहीं करेंगे।'' भीमराव ने समाज के आडम्बरपूर्णता को नकार कर नई चेतना का मार्गदर्शन किया। धर्म की रूढ़ियों का खण्डन करते हुए स्पष्ट किया कि धर्म एक मतवाद है। इससे समाज में व्याप्त बुराईयों को दूर नहीं किया जा सकता है। धर्म परिवर्तन कर भारतीय समाज व्यवस्था का कड़ा विरोध कर न सिर्फ देवी–देवताओं को बल्कि धर्म ग्रंथों, वेदों, पुराणों को भी मानने से इन्कार कर दिया, क्योंकि ये ग्रंथ अखण्डता और समानता का नहीं बल्कि खण्डता और असमानता की शिक्षा देते हैं। इसलिए डॉ. अम्बेडकर ने मनुस्मृति जलाने का निर्णय लिया। मनुस्मृति तो जल गई किन्तु ''इसकी छाप जिस मस्तिष्क पर पड़ चुका था उसे तोड़ना या जलाना कैसे सम्भव था? दलितों और गैरदलितों के द्वन्द के साथ ही अम्बेडकर और गाँधी का द्वन्द भी चल रहा था। दोनों ही विद्वानों द्वारा स्वयं को दलितों का पक्षधर सिद्ध करने का प्रयास जारी था। दोनों ही अपने लोगों का भविष्य संवारने के लिए स्वतंत्र भारत में सामाजिक, राजनीतिक अधिकार सुरक्षित कर लेना चाहते थे। किन्तु गाँधी से पूर्णतः विपरीत अम्बेडकर की विचारधारा थी। वे विद्वान भी थे और कर्मठ राजनीतिज्ञ भी। उनकी वैचारिकता पर विज्ञाननिष्ठा, आधुनिक सामाजिक चिंतन और पश्चिमी राजनीतिज्ञ, आधुनिक अवधारणाओं की गहरी छाप थी। गाँधी के लेखन में जो स्थान सत्य एवं अहिंसा का है अम्बेडकर के प्रतिपादन में वही स्थान स्वातंत्र्य, समता और बंधुत्व की त्रिपुटी का है।[4]

अम्बेडकर अपने इस आंदोलन को जारी रखते हुए आल इण्डिया शेड्यूल्डकास्ट फेडरेशन, आल डिप्रेस्ड क्लासेस जैसी संस्था संचालन के साथ–साथ न केवल अपनी पुस्तकें लिखे, बल्कि कई पत्र–पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया। उनका मानना था कि यही उनके हथियार हैं। संविधान निर्माता डॉ. भीमराव का व्यक्तित्व महान था। जिन्होंने स्वयं अनेक प्रकार की प्रताड़नाएँ, कष्ट, आलोचनाएँ सब कुछ सहन करते हुए कभी किंचित मात्र भी विचलित नहीं हुए। आज उनका एक–एक कार्य, एक–एक बातें दलितों के लिए हितकारी एवं प्रेरणादायी सिद्ध हो रही है। डॉ. अम्बेडकर की प्रेरणा से लाखों– करोड़ों दलित व्यक्ति अम्बेडकर बनने की ओर

अग्रसर हैं। इसी प्रेरणा से दलित साहित्य मजबूत व दृढ़ हो रहा है। 1967 ई. में महाराष्ट्र बौद्ध सम्मेलन का आयोजन व 1972 में दलित पैंथर संगठन, ये दोनों ही घटनाएँ विश्व साहित्य की परम्परा में अपना नाम दर्ज कराने में सफल सिद्ध होती हैं, क्योंकि ये दोनों ही आंदोलन मनुष्यता पर किये जा रहे वर्ण, जाति व लिंग के आधार पर अत्याचार व शोषण के विरोध से उत्पन्न होता है। भारत में ही नहीं बल्कि विश्वभर में अनेक स्तरों पर दलित उत्पीड़न आज भी जारी है। कुल मिलाकर चाहे दलित साहित्य हो या अमेरिका का ब्लैक पैंथर या कोई अन्य आंदोलन सभी के मूल में मानव मुक्ति ही प्रमुख है। माता प्रसाद लिखते हैं कि ''विचारधारा कोई भी हो, दलित साहित्य हो, अश्वेत, स्त्री केन्द्रित साहित्य हो, प्रगतिशील/जनवादी साहित्य ये सभी प्रवृत्तियाँ पाउलो फेरेरो के शब्दों में थोड़ा परिवर्तन कर उत्पीड़ितों का साहित्य (लिटरेचर आफ दा आप्रेस्ड) हैं। वह बिना किसी परिवर्तन के उन्हीं के शब्दों में उत्पीड़ितों का साहित्य मुक्ति के लिए सांस्कृतिक कर्म है।[5]

वर्तमान समय में चाहे दलित साहित्य हो या स्त्रीवादी साहित्य सम्पूर्ण विश्व में ये दोनों ही शक्तियाँ क्रांतिकारी आंदोलन के रूप में प्रभावी हैं। आज भारतवर्ष में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व में विभिन्न स्तरों पर मानवता का उत्पीड़न जारी है। इसलिए विचारधारा कोई भी हो। वह मानव मुक्ति के लिए संघर्षरत है फिर भी रूढ़ियाँ टूट नहीं रही है।

दलित आत्मसम्मान के लिए पहला कदम भगवान बुद्ध ने उठाया। बुद्ध ही थे जिन्होंने सर्वप्रथम वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित इस क्रांति में सुनीता जैसी भंगीनी को अपने संघ में शामिल कर दलित मुक्ति आंदोलन का बिगुल फूँका। इस परिवर्तन रूपी आंदोलन का केन्द्र दक्षिण भारत व महाराष्ट्र है। डॉ. भीमराव के नेतृत्व में यह आंदोलन पुष्पित व पल्लवित हुआ। दलित आंदोलन का वर्तमान रूप मानव सभ्यता के आरम्भ से ही अविरल धारा के समान चला आ रहा है। यह आंदोलन परिवर्तन का ही पर्याय है। इतिहास गवाह है कि जब–जब आंदोलन हुआ है, सामाजिक रूढ़ियाँ टूटी हैं और परिवर्तन सम्भव हुआ है। फ्रांस में रूशो, वाल्टेयर, रूस में गोर्की, तोल्सतोय आंदोलन के माध्यम से समाज को सार्थक दिशा प्रदान की। किन्तु दलित साहित्य की दृष्टि से इन आंदोलनों द्वारा किसी व्यक्ति विशेष या समाज को क्षति पहुँचाना नहीं, बल्कि शोषण और उत्पीड़न से दलित समाज को मुक्त कराना है। इसलिए यह आंदोलन मानव समाज को एक नवीन दिशा प्रदान करता हुआ मानवीय मूल्यों में बदलाव हेतु प्रतिबद्ध है, क्योंकि दया और भीख मांगने से नहीं बल्कि क्रांति और आंदोलन से ही दलित मुक्ति सम्भव है।

1924 में घटित त्रावनकोट स्टेट की एक घटना है जहाँ वाइकोम मंदिर में जाने वाली सड़कों पर अछूतों को चलने का अधिकार नहीं था जबकि वह सड़क सार्वजनिक थी, किन्तु सर्वजन के लिए नहीं सिर्फ सभ्यजन के लिए थी। उस सड़क का रख–रखाव स्टेट सरकार करती है। सन् 1924 में अछूतों ने इस सड़क पर अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए सत्याग्रह कर दिया। परिणामतः अछूतों को उन सड़कों पर चलने के लिए सड़क सार्वजनिक कर दी गई। अर्थात् यदि हिन्दी पट्टी में आए आंदोलनों के उभार को देखा जाय तो एक उपलब्धि माना जा सकता है। यह सफलता ध्यानाकर्षण योग्य है, क्योंकि यह किसी के द्वारा खैरात में दिया गया नहीं है बल्कि दलित समुदाय के अनवरत संघर्ष का परिणाम है। सभी दलित जातियां दलित आंदोलन का संचालन कर रही हैं। जैसे महाराष्ट्र का महाड़ आंदोलन, उत्तर प्रदेश का जाटव चमार, गुजरात का बुनकर, आंध प्रदेश के माला जातियों के प्रभाव से हिन्दी दलित साहित्य भी दलित आंदोलन बन गया है, क्योंकि मनोवैज्ञानिक और संस्कारगत रूप से वर्णाश्रम व्यवस्था इतनी दृढ़ हो चुकी थी कि दलितों की चेतना को गुमराह कर दे रही थी, फिर भी प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से दलित शोषण के खिलाफ मुक्ति की चेतना विद्रोह के रूप में फूट रही है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार इस विद्रोह के दो कारण थे।

प्रथम– दलितों को यह अनुभव होने लगा था कि अपीलों और प्रतिरोध से हिन्दू व्यवस्था को बदला नहीं जा सकता, क्योंकि हिन्दुओं के दिलों पर उनका कोई असर नहीं होता था।

द्वितीय– सरकार ने सभी सार्वजनिक सुविधाएँ और संस्थाएँ दलितों के लिए खोलने की घोषणा कर दी थी परन्तु हिन्दुओं के विरोध के कारण दलित उनका उपयोग नहीं कर पा रहे थे। अन्ततः सीधी कार्यवाही के अतिरिक्त अपने अधिकार को पाने के लिए दलितों के पास अन्य कोई रास्ता शेष नहीं था।[6] परिणामतः विभिन्न आंदोलनों को चलाकर डॉ. अम्बेडकर ने दलितों में चेतना जगाने का प्रयास किया, किन्तु परिणाम यह हुआ कि दलितों के साथ–साथ स्वयं अम्बेडकर को भी अत्याचारों का सामना करना पड़ा। 1945 के भाषण में डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि ''दलितों को सत्ता हाथ में लेकर स्वयं शासन करना चाहिए। अपने अधिकारों की

रक्षा हमें स्वयं करना है।'' इस बात की बहुत बड़ी कीमत डॉ. अम्बेडकर को चुकानी पड़ी। डॉ. अम्बेडकर का भारत–भूषण प्रिंटिंग प्रेस जला दिया गया। दलितों पर अत्याचार इस कदर चरम पर थी कि दिल दहल उठता था, सभी दलितों को गाँव छोड़कर पलायन करना पड़ा।

1935 में घटित अहमदाबाद जनपद के कबीला नामक गाँव की घटना है जब दलितों ने अपने बच्चों का स्कूल में प्रवेश कराया तो सवर्ण हिन्दुओं ने गाँव की महिलाओं, बच्चों एवं वृद्धों तक को पीटकर अधमरा कर दिया, उनका सामाजिक बहिष्कार कर दिया गया और यहाँ तक कि उनके कुँओं में मिट्टी का तेल डाल दिया गया। इस घटना से अम्बेडकर इतना व्यथित हुए कि हिन्दू धर्म को त्याग की घोषणा कर दिया और कहा कि ''दुर्भाग्यवश, मैं एक हिन्दू अछूत के रूप में पैदा हुआ हूँ..... मैं आपको निष्ठापूर्वक विश्वास दिलाता हूँ कि मैं एक हिन्दू के रूप में नहीं मरूँगा।[7] वर्तमान दलित आंदोलन अम्बेडकर के विचारों का ही वेग है जो दलित साहित्य आंदोलन के रूप में समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के साथ अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत है और मनुवाद, पुरोहितवाद पर अंकुश लगा दिया है। शब्दों के माध्यम से दलित अपने विद्रोह को दुनिया के समक्ष रखने में पूर्णतः सफल सिद्ध हुआ है। चेतना के माध्यम और अपनी प्रतिभा के दम पर आज सभी क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है।

डॉ. अम्बेडकर के जोरदार नेतृत्व के बाद भी गाँधी दलितों का पक्षधर बनने की इच्छा रखते थे। वे दलितों का मार्गदर्शन अपने गाँधीवादी दृष्टिकोण से करना चाहते थे। किन्तु सत्य तो यह था कि जब दलितों का मार्गदर्शन करने वाला सक्षम हो तो गैरदलितों का क्या काम? कोई जरूरी नहीं कि गैरदलित जो मार्गदर्शन करेगा वह दलितों के हित में ही हो। अम्बेडकर के मार्गदर्शन की जानकारी गाँधी के सहनशीलता के बाहर की बात थी। अम्बेडकर अछूतों के लिए प्रथम निर्वाचन मण्डल की मांग की तो गाँधी ने इसका प्रखर विरोध किया। गोलमेज सम्मेलन व पूना पैक्ट गाँधी के हठ का ही परिणाम है। गाँधी यरवदा जेल में थे; वे अम्बेडकर के मत का विरोध कर रहे थे; किन्तु जब बात नहीं बनी तो उन्होंने अहिंसक अस्त्र ब्रह्मास्त्र आमरण उपवास प्रयुक्त किया। ''गाँधी जी का स्वास्थ्य खराब होते देख उनके पुत्र देवदास गाँधी प्राण बचाने का अनुरोध लेकर अम्बेडकर के पास आते हैं। अम्बेडकर के लिए ये द्वन्द्व से भरे क्षण हैं। एक तरफ उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता है तो दूसरी ओर गाँधी के प्राण रक्षा का सवाल। अम्बेडकर की जीवन संगिनी रमाबाई उनसे कहती हैं लोग अपनी जान बचाने महात्मा के पास जाते हैं। लेकिन आज आपको उनकी जान बचाने का मौका मिला है, उन्हें लोग महात्मा मानते हैं। अम्बेडकर राजनीति से दूर सीधी–सरल रमाबाई के विचारों की गहराई से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे।[38] निश्चय ही अम्बेडकर के लिए कठिन चुनौती थी। इसलिए अम्बेडकर को कई दबावों के कारण गाँधी जी से समझौता करना पड़ा।

इस प्रकार दलित आंदोलन के इस समुद्र में दलितों की स्थिति में सुधार लाने के लिए अनेक छोटे–बड़े आंदोलन होते रहे हैं। जैसे–आगरा का जाटव आंदोलन, पूर्वी उत्तर प्रदेश में रविदास व केशव आंदोलन, छत्तीसगढ़ का सतनामी आंदोलन, पंजाब का आदि धर्मी आंदोलन, महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले का आंदोलन, बंगाल का नामशूद्र आंदोलन, दक्षिण भारत केरल में श्रीनारायण धर्म आंदोलन, तमिलनाडू में पेरियार नायकर का आंदोलन जैसी एक नहीं अनेक आंदोलनों का सूत्रपात होता रहा है। इन आंदोलनों का एकमात्र लक्ष्य है सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक–स्तर पर दलितों की स्थिति में सुधार लाना। लेकिन यह आंदोलन कितना सफल होता है, कितना विफल होता है, इसकी भी समीक्षा होनी चाहिए, जिससे आंदोलनों की सफलता व विफलता के सही कारणों को पहचान कर उसमें सुधार लाया जा सके ताकि भविष्य में जो भी आंदोलन हो उसके विफल होने का कोई कारण शेष न रहे, क्योंकि आंदोलनों की सफलता ही दलित मुक्ति की दिशा तय करेगी। अम्बेडकर ने भारतीय दलितों के उत्थान हेतु जो स्वप्न देखा था वह आज भी पूर्ण नहीं हुआ है उनके द्वारा चलाया गया आंदोलन वहीं रूक गया है या कहें उससे भी पीछे चला गया है।

अम्बेडकर जी का कहना था कि ''यदि तुम मेरे आंदोलन को आगे नहीं ले जाना तो उसे पीछे भी मत होने देना।'' किन्तु आंदोलन पीछे अवश्य गया है, आगे नहीं। इस समय फुले, गाँधी व अम्बेडकर आ जाते तो निश्चय ही वे अपनी मूर्तियाँ नहीं लगवा रहे होते, पार्कों में मूर्तियों पर अपना नाम नहीं खुदवा रहे होते बल्कि यह विचार करके ठिठुर रहे होते कि उनके समय का महान आंदोलन आज किस दशा में है? वे सचमुच मूर्ति या प्रतीक बनकर नहीं रह जाते बल्कि दलित समाज कल्याण/समाज सुधार हेतु सार्थक कदम उठाते और आंदोलन चलाते, क्यों कि आज समाज सुधार व आंदोलन के नाम पर लूट–खसोट व धांधली मची हुई है, आंदोलन के नाम पर स्वार्थ सिद्धि की जा रही है। इसलिए जब तक समाज संगठित नहीं होगा तब तक

आंदोलन या संघर्ष की बात सोचना भी बेईमानी है। इस प्रकार डॉ0 भीमराव अम्बेडकर एक महान मानवतावादी और राष्ट्रवादी विचारक थे। उन्होंने भारतीय दलितों में एक नई उर्जा का संचारकर दलित आन्दोलन को नई दिशा देने का महान कार्य किया है। एक लम्बे समय से प्रताणित जाति व्यवस्था और वर्णव्यवस्था का शिकार हो रहे दलित समाज को मुख्यधारा से जोड़ने का कार्य किया है। इसलिए अम्बेडकर जी का यह प्रयास अतुलनीय है।

संदर्भग्रंथ सूची–

1. ठाकुर हरिनरायन–दलित साहित्य का समाजशास्त्र, द्वितीय संस्करण 2010, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 266.
2. डॉ. सत्यप्रेमी पुरुषोत्तम–दलित साहित्य सृजन के संदर्भ में, द्वितीय संस्करण 2008, कुमार पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली, पृ. 70.
3. लिम्बाले, शरणकुमार–दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, तृतीय संस्करण 2008, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 136.
4. डॉ.तिवारी मुन्ना–दलित चेतना और समकालीन हिन्दी उपन्यास, प्रथम संस्करण 2001, संजय बुक सेंटर, गोलघर, वाराणसी, पृ. 43.
5. प्रसाद माता–दलित साहित्य दशा और दिशा, संस्करण 2003, भारतीय दलित साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृ. 113.
6. यादव, वीरेन्द्र सिंह–इक्कीसवीं सदी का दलित आंदोलन, प्रथम संस्करण 2010, राधा पब्लिकेशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 194.
7. वही, पृ. 196.
8. सं. सिंह नमिता–वर्तमान साहित्य, वर्ष 26, अंक अप्रैल 2010, 28 मिग, अवन्तिका–I, रामघाट रोड, अलीगढ़, पृ. 59–60.